आत्मदर्शन ही मोक्ष का कारण है

अप्पा-दंसणु एक्कु परु, अण्णु ण किं पि वियाणि।
मोक्खहँ कारण जोइया, णिच्छइँ एहउ जाणि॥१६॥

निज दर्शन ही श्रेष्ठ है, अन्य न किञ्चित् मान।
हे योगी! शिव हेतु अब, निश्चय तू यह जान॥

अन्वयार्थ – (**जोईया**) हे योगी! (**एक्कु अप्पादंसण मोक्खह कारण**) एक आत्मा का दर्शन ही मोक्ष का मार्ग है (**अण्णु परु ण किं पि वियाणि**) अन्य कुछ भी मोक्षमार्ग नहीं है – ऐसा जान (**णिच्छह एहउ जाणि**) निश्चयनय से तू ऐसा ही समझ।

वीर संवत २४९२, ज्येष्ठ कृष्ण ९, रविवार, दिनाङ्क १२-०६-१९६६
गाथा १६ से १७ प्रवचन नं. ६

'योगीन्द्रदेव' कृत 'योगसार' है। 'योगसार' का वास्तविक अर्थ तो यह है – योग अर्थात् व्यापार; आत्मस्वभाव का व्यापार, उसका सार। वास्तविक मोक्ष का मार्ग। योग अर्थात् जुड़ान। चैतन्यस्वरूप एक समय में पूर्ण शुद्ध द्रव्यस्वभाव, उसके साथ जुड़ान करना, उसमें एकाग्र होना, उसे यहाँ योग कहते हैं। उसमें भी यह 'सार' अर्थात् परमार्थ मोक्ष के मार्ग की व्याख्या है। उसमें भी इस सोलहवीं गाथा में तो बहुत उत्कृष्ट बात है, अर्थात् ऐसी सच्ची बात है। सोलहवीं गाथा है न यह ?

आत्मदर्शन ही मोक्ष का कारण है। पुस्तक मिली सबको ? इस श्लोक, शब्द का क्या अर्थ होता है – इतना ख्याल में रखना। इसमें तो अकेले शब्द हैं।

अप्पा-दंसणु एक्कु परु, अण्णु ण किं पि वियाणि।
मोक्खहँ कारण जोइया, णिच्छइँ एहउ जाणि॥१६॥

हे धर्मात्मा! ऐसा शब्द कहा। 'योगी' कहा न? योगी अर्थात् हे धर्मी! **अप्पा दंसण इक्क** – यह आत्मा का दर्शन, वह एक ही दर्शन, वह मोक्ष का मार्ग है। कुछ समझ में आया? आत्मा एक समय में अनन्त शुद्ध गुण सम्पन्न प्रभु, ऐसा आत्मा, उसका दर्शन। **अप्पा दंसण इक्क** – यह आत्मा... शास्त्र पद्धति से पहले आत्मा को जानकर, शास्त्र की रीति से सर्वज्ञ के कथन द्वारा वह 'आत्मा कैसा है' – ऐसा जानकर, फिर करना क्या? कि भगवान आत्मा **अप्पा दंसण** इस शुद्ध अभेद चैतन्य प्रभु में एकाकार (होना)। मन -वचन और काया की क्रिया से भिन्न, पुण्य-पाप के विकल्प के राग से पृथक् तथा गुणी और गुण के भेद भी वहाँ काम नहीं करते।

जहाँ आत्मा का दर्शन अर्थात् सम्यग्दर्शन है। वहाँ मन की पहुँच नहीं, वाणी की गति नहीं, वहाँ काया की चेष्टा काम नहीं करती। समझ में आया? मन की जहाँ गति नहीं, वाणी का वहाँ प्रयोग नहीं, काया की वहाँ चेष्टा नहीं, विकल्प का वहाँ अवकाश नहीं और गुणी आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड, सर्वज्ञ ने देखा, हुआ कहा हुआ; उसके गुणी और गुण के भेद (का) भी जहाँ स्थान नहीं – अवलम्बन नहीं, आधार नहीं – ऐसा आत्मा, अभेद अखण्डस्वरूप का अन्तर दर्शन करना, प्रतीति करना – इसका नाम एक ही सम्यग्दर्शन कहा जाता है। इसका नाम एक ही सम्यग्दर्शन कहा जाता है। समझ में आया? कहो, रतिभाई!

अप्पा दंसण इक्क – है न? एक आत्मा का दर्शन, मोक्ष का मार्ग। फिर सम्यग्दर्शन एक ही मोक्ष का मार्ग है, ऐसा। ज्ञान और चारित्र, यह अनुभव में आ गये। आत्मा दर्शन, अनुभव। एक समय में पूर्ण शुद्ध, उसे अनुसर कर अभेद का अनुभव करना – ऐसा जो आत्मदर्शन, वह एक; वह एक ही। दूसरा सम्यग्दर्शन, दूसरा प्रकार है – ऐसा नहीं, यह कहते हैं। समझ में आया? **अप्पा दंसण इक्क** – अभी इतना शब्द पड़ा है। भगवान आत्मा, जिसे **अप्पा** कहते हैं, एकस्वरूप अभेद चैतन्य, उसे आत्मा कहते हैं। उसका दर्शन, उसकी अन्तर में अनुभव करके प्रतीति करना, वह एक ही **अप्पा दंसण**

– एक ही सम्यग्दर्शन है। दो सम्यग्दर्शन नहीं है, दो मार्ग नहीं है; इसके अतिरिक्त दूसरा सब मिथ्यादर्शन है। समझ में आया ?

अप्पा दंसण इक्क – बहुत संक्षिप्त में कहा है। जिसे आत्मा कहते हैं; आत्मा कहें, तब दूसरी चीजें हैं। अजीव है; मन-वचन-काय की चेष्टाएँ अजीव की पर्याय है; अन्दर पुण्य-पाप का विकल्प और राग, (जिसका) आत्मा में अभाव है, ऐसी चीज है। मन-वचन और काया, जिसके विकल्प के विचार के समय मन भी है, वाणी से कहते हैं, वह सुनने का (होता है), वह भी है, परन्तु वे सब आत्मदर्शन में काम नहीं करते। समझ में आया ?

अप्पा – यह आत्मा अर्थात् परमात्मा पूर्ण स्वरूप। उसका दर्शन अर्थात् सम्यग्दर्शन; एक ही सम्यग्दर्शन है। देखो! कोई कहते हैं न कि सम्यग्दर्शन दो प्रकार का है, ज्ञान दो प्रकार का है, चारित्र दो प्रकार का है। (तो कहते हैं कि) नहीं; दो प्रकार के हैं ही नहीं। सम्यग्दर्शन का कथन भले ही व्यवहार और निश्चय से (–ऐसे) दो प्रकार से आवे (परन्तु) वस्तु एक ही निश्चय, वह सम्यग्दर्शन है; दूसरा सम्यग्दर्शन नहीं। समझ में आया ? भाषा समझ में आती है न ? भैया! मिश्रीलालजी! थोड़ी-थोड़ी समझ लेना। इन्दौरवालों को तो थोड़ा गुजराती का अभ्यास है... थोड़ा-थोड़ा। आहा...हा...!

यह शब्द तो पड़ा है न ? **अप्पा दंसण इक्क।** योगीन्द्रदेव सन्त मुनि-दिगम्बर मुनि महा धर्मात्मा छठवीं-सातवीं भूमिका-गुणस्थान में झूलनेवाले! अनादि सनातन वीतराग मार्ग में अन्तर शान्ति की जिन्हें उत्पत्ति हुई है (अर्थात्) चारित्र; ऐसे सन्त ऐसा कहते हैं – आत्मा का दर्शन, वह एक ही सम्यग्दर्शन है। नव तत्त्व की श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन नहीं; भेदवाली श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन नहीं; देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन नहीं; छह द्रव्य की श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन नहीं। रतिभाई! है ? किसी दिन भी निवृत्त हो तब न! सुनने के लिए निवृत्त नहीं, समझने को निवृत्त नहीं। यह शान्तिभाई रात्रि को पुकार तो करते थे, कहाँ गये शान्तिभाई ? हैं ? गये ? ठीक! कहो, समझ में आया ? निवृत्त होवे, निवृत्त – ऐसा शाम को कहते थे परन्तु निवृत्त कहाँ ? यह सुनने को अभी निवृत्ति नहीं मिलती। फुरसत... फुरसत...!

अप्पा दंसण इक्क शब्द पड़ा है, देखो! तीन शब्द हैं। एक आत्मा अर्थात् कि एक समय में पूर्ण चिदानन्द अभेद वस्तु को आत्मा कहते हैं। उसका दर्शन। **अप्पा** – यह द्रव्य है; दर्शन – यह पर्याय है। समझ में आया कुछ? भगवान अभेद चैतन्यवस्तु आत्मा को आत्मद्रव्य कहते हैं। अभेद एकाकार, वह द्रव्य। **दंसण** उसकी श्रद्धा, अनुभव में प्रतीति, उसे पर्याय कहते हैं। वह **अप्पा दंसण इक्क** – यह सम्यग्दर्शन एक है। ऐसे तीन शब्द हुए। समझ में आया? जयन्तीभाई नहीं आये? कहो, समझ में आया इसमें? आहा...हा...!

अप्पा दंसण इक्क और इस आत्मदर्शन के बिना जितने क्रियाकाण्ड में धर्म मनाये, वह मिथ्यादर्शन की पर्याय है। हैं? भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण अभेद अनन्त गुण का एकरूप, उसकी अन्तर में स्वसन्मुख की प्रतीति के भाव को दर्शन कहते हैं। इस सम्यग्दर्शन के प्रकाश के अभाव में जितने पुण्यादि-दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हैं, वे धर्म हैं – ऐसा माननेवाले को मिथ्यादर्शन है।

मुमुक्षु – सम्यग्दर्शन होने के बाद माने?

उत्तर – सम्यग्दर्शन होने के बाद तो माने ही नहीं वह। माने वह तो व्यवहार बीच में आता है। मन-वचन की चेष्टा की क्रियाएँ बीच में आती है, व्यवहार; परन्तु वह व्यवहार बन्ध का कारण है और अनुकूलता कहें तो उस अन्तर अनुभव की दृष्टि में उसे निमित्त कहा जाता है। अनुकूलता से कहें तो निमित्त, प्रतिकूलता से कहें तो बन्ध का कारण। चन्दुभाई! क्या कहा यह? कि भगवान आत्मा एक समय में जिसे आत्मा कहते हैं; यहाँ पहले शब्द का अर्थ है। एक रूप प्रभु अभेद चैतन्य ज्योत का दर्शन, उसकी प्रतीति, उसके अन्तर अनुभव में 'यह आत्मा' – ऐसी श्रद्धा; उस श्रद्धा के अतिरिक्त कोई भी विकल्पादि उत्पन्न हो और हों, उसे धर्म मानना या दूसरी बात को सम्यग्दर्शन मानना – इसका नाम मिथ्यादर्शन का प्रकाश है – मिथ्यादर्शन पसरा (व्याप्त) है। समझ में आया?

परु अण्णु ण किं पि वियाणि भगवान आत्मा, उसका सम्यग्दर्शन, उसका अनुभव एक ही दर्शन (है); दूसरा कोई दर्शन है ही नहीं। दूसरा कोई मार्ग नहीं है, दूसरा कोई दर्शन नहीं है, दूसरी कोई मोक्ष के मार्ग की अनुकूलता की रीति नहीं है। समझ में आया? ऐसे दर्शन के अतिरिक्त **परु... परु** है न? आत्मा के दर्शन के अतिरिक्त **परु**

अर्थात् पर... पर... पर.... चाहे तो देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा का राग (हो), नव तत्त्व की श्रद्धा के भेद का राग (हो), षट् द्रव्य की श्रद्धा का राग (हो), वह सब **परु अण्णु।** पर.... आत्मा के स्वभाव से अन्य – ऐसी दो बातें कही। समझ में आया कुछ ? अन्य, पर - ऐसा।

आत्मा के अभेदस्वभाव की दृष्टि से अन्य जितना पर है, वह **ण किं पि वियाणि** – मोक्षमार्ग नहीं जानना। उसे जरा भी मोक्षमार्ग नहीं मानना। आहा...हा... ! समझ में आया इसमें ? एक, इससे अन्य को जरा भी सम्यग्दर्शन नहीं मानना। शुभराग में, देह की क्रिया में या किसी भी नवतत्त्व की श्रद्धा के राग में सम्यग्दर्शन अथवा मोक्ष का मार्ग जरा भी – थोड़ा भी दूसरे में इसके अतिरिक्त है नहीं। **अण्णु ण किं पि वियाणि** जरा भी, आत्मा के दर्शन के सिवाय, दूसरा मार्ग, उसमें दर्शन और मोक्ष का मार्ग जरा भी नहीं है। मनसुखभाई ! आहा...हा... ! ऐ...ई... ! हिम्मतभाई ! समझ में आता है या नहीं ? देखो ! यह सब धीरे-धीरे यह सुनने आनेवाले हो गये हैं। आहा...हा... ! अरे... ! भाई ! सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर वीतरागदेव के मुख में से निकली हुई दिव्यध्वनि... परमेश्वर त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ की वाणी में आया, ऐसा सन्तों ने चारित्रसहित अनुभव किया। यहाँ योगीन्द्रदेव मुनि हैं न ? उन्होंने जगत के समक्ष यह रखा कि वस्तु का स्वरूप यह है। समझ में आया ?

अप्पा दंसण इक्क, दो नहीं; और दूसरा अन्य जो कुछ है, वह कोई भी मोक्षमार्ग में गिनने में नहीं आता अथवा दूसरी मिथ्या बात को, ऐसी श्रद्धा के अतिरिक्त किसी दूसरी बात से श्रद्धा माने, उसे मिथ्यादर्शन होता है। समझ में आया ? यह तो अभी पहली-ईकाई की बात है। जैन सम्प्रदाय में जन्में परन्तु जैन परमेश्वर त्रिलोकनाथ केवलज्ञानी क्या कहते हैं ? – उसका पता नहीं पड़ता; पता नहीं पड़ता और जिन्दगी गँवाये और हो गया हम कुछ धर्म करते हैं। रतिभाई ! हैं ? ऐसा ही है। लो ! दो-दो घण्टे वहाँ पढ़े परन्तु समझे नहीं, फिर चलो थोड़ा वहाँ जाएँ। उसमें कोई बात ठीक से पकड़ में नहीं आती। चलो, अब पूरा हो जाएगा। आहा...हा... !

परु अण्णु ण किं पि वियाणि – जरा भी, आत्मा के अनुभव की दृष्टि के अतिरिक्त सम्यग्दर्शन दूसरी किसी चीज में नहीं हो सकता; किसी चीज द्वारा नहीं हो

सकता, किसी चीज में नहीं हो सकता। आहा...हा...! गुणी भगवान और गुण के भेद द्वारा भी सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता। समझ में आया? तो फिर राग और दया, दान के विकल्पों से – पहले यह पालन करो – फिर सम्यग्दर्शन होगा – धूल में भी नहीं। सुन न! मर जाएगा हैरान होकर, अनन्त काल से। कहो, समझ में आया?

अण्णु ण किं पि वियाणि गाथा भी बहुत सरस आयी, सोलहवीं है, देखो! ऐ... मनुसखभाई! **मोक्खह कारण जोईया** योगी अर्थात् हे धर्मी! सम्यग्दृष्टि को धर्मी ही कहा है, योगी कहा है। सम्यग्दर्शन – आत्मा की अन्दर की रुचि के, अनुभव का योग जोड़ा है – ऐसे चौथे गुणस्थान में भले भरत चक्रवर्ती जैसा चक्रवर्ती हो, छह खण्ड का राज्य और छियानवें हजार पद्मनी जैसी रानियाँ हों, परन्तु उसने आत्मा के साथ योग जोड़ा है। जो अभेद चिदानन्दस्वरूप की दृष्टि हुई है (इसलिए) सम्पूर्ण संसार से वैराग्य और उदासीनता अन्दर वर्तती है। जिसे भोग की रुचि नहीं है, भोग में सुखबुद्धि नहीं है, क्योंकि भगवान आत्मा का दर्शन हुआ, उसमें आनन्द है – ऐसा रुचि में आया है। आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द है – (जिसे) ऐसा आत्मदर्शन हुआ, उसे छियानवें हजार नहीं, परन्तु इन्द्राणी के सुख में भी उसे सुख का लालच और सुखबुद्धि नहीं होती। समझ में आया?

मोक्खह कारण यहाँ तो भई! दर्शन को मोक्ष का कारण कहा। यहाँ तो उन तीन की बात भी नहीं। जोर देना है न! अनुभव का जोर देना है। आत्मा का अनुभव... उसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र के तीनों अंश आ जाते हैं। ऐसा कहना है। आहा...हा...! भगवान आत्मा शान्त... शान्त... धीरजवान होकर अन्तर के स्वभाव की एकता को अवलम्बन करे, एकता के स्वभाव को अवलम्बन करे – ऐसा जो सम्यग्दर्शन, उसमें सम्यग्ज्ञान और स्वरूपाचरण का भाव – चारित्र का अंश भी साथ ही साथ उत्पन्न होता है। इसलिए यहाँ एक सम्यग्दर्शन को ही मोक्ष का कारण कहा है। एक ओर **सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः** (कहते हैं)। एक ओर सम्यग्दर्शन, मोक्ष का कारण (कहते हैं)। समझ में आया?

यह भगवान आत्मा, अपना सहजानन्दस्वभाव, उस आनन्द के सम्मुख होकर जहाँ दृष्टि हुई और रुचि का परिणमन हुआ, उसमें श्रद्धा – स्वरूप की श्रद्धा, स्वरूप का ज्ञान, और स्वरूप में आंशिक आचरणरूप रमणता (हुई)। उस सम्यग्दर्शन में अथवा अनुभव

में तीनों आ जाते हैं। आहा...हा... ! समझ में आया ? अभी यह सब विवाद निकालते हैं न ? चौथे गुणस्थान में स्वरूपाचरण नहीं होता... विद्वानों में बड़ी चर्चा चलती है। एक व्यक्ति कहे होता है, दूसरा कहे नहीं होता। आहा...हा... ! ऐसा अभी पता नहीं पड़ता। अभी सम्यग्दर्शन में स्वरूपाचरण नहीं होता - ऐसी बातें करते हैं। आहा...हा... !

भगवान आत्मा अपने अन्तर्मुख के स्वभाव की ओर ढला और प्रतीति व ज्ञान हुआ उतना ही उसमें अनन्तानुबन्धी का भी अभाव होकर, स्वरूप की रमणता का इतना आचरण प्रगट हुए बिना सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता। समझ में आया ? क्योंकि उसे अन्तरात्मा कहा है। बहिरात्मा जो था, वह पुण्य-पाप, विकल्प और निमित्त में अपनेपन का अस्तित्व स्वीकार करता था, उसे अखण्डानन्द प्रभु अनन्त गुण का पिण्ड उसके अस्तित्व का स्वीकार (न किया), उस स्वीकार में अन्तर रमणता आये बिना स्वीकार नहीं हो सकता।

अन्तर आत्मा.... अन्तर आत्मा अर्थात् क्या ? अन्तर आत्मा... परमात्मस्वरूप त्रिकाली द्रव्यस्वरूप अपना, उसका अनुभव होना, दृष्टि होना, उसका नाम अन्तरात्मा है तो कुछ आत्मा में अन्तर में परमात्मस्वरूप अपना है, उसमें कुछ स्थिर हुआ तब उसे अन्तर आत्मा कहने में आया है। पूर्ण स्थिर हो तो परमात्मा हो जाये। अकेला राग में स्थिर - एकाकार (होवे तो) वह बहिरात्मा है। समझ में आया ? अद्भुत सूक्ष्म बात ! इसमें कहीं, क्या कहना है ? और क्या करना है ? सुना न हो तो पकड़ना कठिन पड़ता है। यह कहीं वीतराग का मार्ग ऐसा होगा ? ऐसा मार्ग लोगों ने दबोच दिया है न ! समझ में आया ?

परमेश्वर तीन लोक के नाथ सीमन्धर भगवान आदि तीर्थंकर जो कहे हैं, वे भगवान विराजते हैं। सभी एक ही यह बात अनादि तीर्थंकर कहते हैं, अभी कहते हैं, भविष्य में अनन्त काल में अनन्त तीर्थंकर यह कहेंगे। समझ में आया ? आहा...हा... !

मोक्खह कारण जोईया इस मोक्ष का कारण तो एक ही है। आहा...हा... ! एकान्त नहीं हो जाता ? सम्यग्दर्शन को मोक्ष का कारण कहने से एकान्त नहीं हो जाता ? भाई ! इसमें अनेकान्त रहता है। स्वरूप की दृष्टि, स्वरूप का ज्ञान और स्वरूपाचरण तीनों इकट्ठे हैं और उसमें विकल्पादि के भाव का नास्तिभाव है। समझ में आया ? जिसे व्यवहार रत्नत्रय कहते हैं, या व्यवहार समकित कहते हैं, वह तो राग है। उसका इस निश्चय

सम्यग्दर्शन में अभाव है। ऐसे सम्यग्दर्शन बिना दूसरे को सम्यग्दर्शन माने, उसे मिथ्यादर्शन की पर्याय होती है। समझमें आया ?

णिच्छह एहउ जाणि 'योगीन्द्रदेव', योगीन्द्रदेव आदेश करते हैं। हे आत्मा! निश्चय से, यथार्थ से, सत्य स्वरूप से.... निश्चय अर्थात् सत्य स्वरूप से इस प्रकार है – ऐसा तू जान, ऐसा तू जान। बाकी सब विकल्पादि हों, उन्हें व्यवहार और निमित्तरूप जान। समझ में आया ? अद्भुत मार्ग, भाई! लोगों को अभी तो ऐसा हो गया है, इस सम्यग्दर्शन के बिना त्याग और व्रत वे सब अंक बिना की शून्य है – ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? जिसे अभी सम्यग्दर्शन कैसे हो, इसका भी पता नहीं होता... सम्यग्दर्शन की भूमिका कैसी होती है ? उसका भी पता नहीं होता और व्रत, तप, और चारित्र और व्रत ले लिये। एक बिना के.... रण में चिल्लाने जैसा है, वह सब। समझ में आया ?

अन्य कुछ भी मोक्षमार्ग नहीं है.... देखो! इनने अर्थ भी किया है न ? **कुछ भी मोक्षमार्ग नहीं है....** दूसरा मोक्षमार्ग जरा भी नहीं है। आहा...हा...! रागादि का व्यवहार का भाव, व्यवहार श्रद्धा का या शास्त्र के ज्ञान का या कोई कषाय की मन्दता का व्रतादि का, वह भाव किंचित् छूटकारे का मार्ग नहीं है; वह तो बन्धन का मार्ग है। समझ में आया ? **ऐसा जान। निश्चय से तू ऐसा ही जान....** ऐसा। निश्चय अर्थात् सत्य स्वभाव की स्थिति से ऐसा तू जान। सत्य स्वरूप के स्वभाव से ऐसा तू जान। व्यवहार का स्वरूप दूसरा भेद आदि है, वह जाननेयोग्य है परन्तु आदरणीय नहीं। कहो, समझ में आया ? देखो, अन्दर इन्होंने थोड़ा-थोड़ा अर्थ किया है।

व्यवहार धर्म का सर्व आचरण मन, वचन, काया के आधीन है। इसलिए पराश्रय है.... इसमें आपत्ति नहीं। समझ में आया ? और जो कुछ स्व आश्रय से – आत्मा के आश्रय से है (उसके) आधीन, वही उपादान है। बाकी सब निमित्त कहा जाता है परन्तु उस निमित्त में लोग भूलते हैं परन्तु वह निमित्त अर्थात् जहाँ उपादान का अन्तर दर्शन हुआ तब वहाँ रागादिक का संयोग जो व्यवहार है, उसे निमित्तरूप से कहा जाता है। विरुद्धरूप से बंध कहा जाता है, अनुकूलरूप से निमित्त कहा जाता है – ऐसा है। आहा...हा...! कठिन काम, भाई!

मुमुक्षु – निमित्त के बिना कुछ कभी होता है।

उत्तर – परन्तु हुआ है, तब उसे निमित्त कहते हैं। फिर होता है क्या? अन्तर स्वभाव के दर्शन को दर्शन हुआ, तब तो रागादि के व्यवहार समकित को अर्थात् राग को निमित्त कहा गया। नैमित्तिक के बिना निमित्त किसका? समझ में आया? बहुत उल्टा रास्ता है भाई! तुझे पूर्ण आनन्द की महिमा नहीं आती और उस महिमा के बिना जितनी कुछ भेद और राग में महिमा जाये, वह सब मिथ्यादर्शन शल्य है। आहा...हा...! समझ में आया?

वीतराग परमेश्वर का मार्ग जगत् को सुनने नहीं मिला, इसलिए उल्टा रास्ता मान बैठा कि हम भगवान को मानते हैं। भगवान तो ऐसा कहते हैं। ऐसा नहीं मानता और तू भगवान को मानता है – ऐसा कौन कहता है? समझ में आया? देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा कहो कैसे रहे? कैसे रहे शुद्ध श्रद्धा न आवे? शुद्ध श्रद्धा के बिना सर्व क्रिया करे वह राख पर लीपना है... इतनी राख बिछा रखी हो... राख तो समझ में आता है न? राख... राख... उसमें ऊपर मिट्टी करते हैं.... गार को (तुम्हारे यहाँ) क्या कहते हैं? लीपाई करते हैं न? लीपना? वह लीपना कहाँ चले? राख के ऊपर लीपाई चलती होगी? इसी प्रकार आत्मा की भूमिका के दर्शन बिना, शुद्ध श्रद्धा बिना देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, उसकी सच्ची श्रद्धा नहीं है। क्योंकि देव-गुरु-शास्त्र तो यह कहते हैं। देव -गुरु और शास्त्र आत्मा के दर्शन को दर्शन कहते हैं। अब उस दर्शन को दर्शन मानना नहीं और देव-गुरु-शास्त्र को मानते हैं (ऐसा कहता है तो) उसकी वह मान्यता ही मिथ्या है। समझ में आया?

ऐसे आत्मदर्शन के बिना, आत्मा (की) शुद्ध श्रद्धा के बिना, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा भी सच्ची नहीं रहती और उसके बिना जितना क्रियाकाण्ड किया जाये, व्रत-नियम अपवास... वह सब राख के ऊपर मिट्टी लेपना है, मिट्टी (लेपने के समान है)। गार समझ में आता है न? लीपना। पूरी पपड़ी उखड़ती है। राख के ऊपर ऐसे-ऐसे करें, वहाँ उसमें जरा भी लीपाई नहीं होती। समझ में आया? लो! एक गाथा हुई। दूसरी गाथा।

मुमुक्षु – आदेश देते होंगे कि निमित्त से जान।

उत्तर – निश्चय से जानना यह क्या कहा ? दरबार में क्या कहते हैं ? आदेश देते हैं। ऐसे निमित्त से तो ऐसा कि बराबर होता है, ऐसा वह कहता है। समझे न ? है न ?

मुमुक्षु – दो नय हैं न ?

उत्तर – नहीं, नहीं, ऐसा कहते हैं न ? ऐसा कहे तो अन्तर पड़े। तुझे कर का अर्थ तुझे करना है या इसे करना है। ऐसा कहते हैं। यह तो ऐसा कहते हैं कि मेरे सामने देखना छोड़ दे। मैं कहता हूँ उस ओर का सुनने का विकल्प छोड़ दे। यह मैं क्या कहता हूँ, उसका मनन भी मेरे सन्मुख रहकर कर, वह भी छोड़ दे। आहा...हा... ! समझ में आया ? भगवान ऐसा कहते हैं, गुरु ऐसा कहते हैं। ऐसा जो मनन, वह परसन्मुख का मनन है, छोड़ उसे, वह साधन नहीं है। ले, ऐसा कहते हैं। उसे जान, कहते हैं। इस प्रकार जान, समझ में आया ?

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव प्रभु ऐसा स्वयं फरमाते हैं। भाई ! हमारी श्रद्धा तेरी हुई, उसे सम्यग्दर्शन हम नहीं कहते। आहा...हा... ! हमारे द्वारा कथित वाणी के शास्त्रों की तू श्रद्धा करे, उसे हम सम्यग्दर्शन नहीं कहते – ऐसा सर्वज्ञ की वाणी में यह आता है। तब दर्शन किसे कहना ? **अप्पा दंसण इक्क** भगवान तेरा आत्मा, उसके सन्मुख का अनुभव करके प्रतीति का होना, वह एक ही सम्यग्दर्शन है; दूसरा सम्यग्दर्शन दूसरे प्रकार का हमने नहीं कहा, हम कहते नहीं और ऐसा है नहीं। हैं ?

पूछते हो इसलिए अधिक स्पष्ट आता है – ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! भगवान तुझमें तू पूरा प्रभु पड़ा है। तुझे किसी की आवश्यकता नहीं है। इस परसन्मुख के ज्ञान की भी तुझे आवश्यकता नहीं है – ऐसा कहते हैं। परसन्मुख के पदार्थ की तो आवश्यकता नहीं.... आहा...हा... ! परसन्मुख की श्रद्धा की तो आवश्यकता नहीं; परसन्मुख का आश्रय होने पर राग की मन्दता दया, दान, भाव की भी तुझे जरूरत नहीं। उनकी तो जरूरत (नहीं) परन्तु भगवान यह और गुण यह – ऐसे मन के संग से उत्पन्न होनेवाला विकल्प, उसकी भी तुझे जरूरत नहीं है। आहा...हा... ! समझ में आया ? यह सूक्ष्म है, मनहरभाई ! यह ऐसा का ऐसा नहीं। स्टोर में से ऐसा का ऐसा पकड़ में आवे ऐसा नहीं है। थोड़ा-थोड़ा समय निकाले, तब पकड़ में आवे ऐसा है। किसी दिन जा आयें, उसमें कुछ समझ में भी

नहीं आता। कल दोपहर में बहुत बात होती थी। कहा, यह कुछ समझते नहीं। पूरी बात ही अन्तर है। लोगों ने बात ही नहीं सुनी। समझ में आया? आहा...हा...!

☆ ★ ☆

मार्गणा व गुणस्थान आत्मा नहीं हैं

मग्गण-गुणठाणइ कहिय, विवहारेण वि दिट्ठि।
णिच्छय-णइँ अप्पा मुणहि, जिम पावहु परमेट्ठि॥१७॥

गुणस्थान अरु मार्गणा, कहें दृष्टि व्यवहार।
निश्चय आतमज्ञान जो, परमेष्टी पदकार॥

अन्वयार्थ – (**विवहारेण वि दिट्ठि**) केवल व्यवहारनय की दृष्टि से ही (**मग्गणगुणठाणइ कहिया**) जीव को मार्गणा व गुणस्थान कहा है (**णिच्छइणइ**) निश्चयनय से (**मुणहु**) अपने आत्मा को आत्मारूप ही समझा (**जिय परमेट्ठि पावहु**) जिससे तू सिद्ध परमेष्ठी के पद को पा सके।

☆ ★ ☆

१७ वीं गाथा में कहते हैं – **मार्गणा व गुणस्थान आत्मा नहीं हैं।** देखो! आहा...हा...!

मग्गण-गुणठाणइ कहिय, विवहारेण वि दिट्ठि।
णिच्छय-णइँ अप्पा मुणहि, जिम पावहु परमेट्ठि॥१७॥

भगवान सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा दिव्यध्वनि द्वारा फरमाते हैं। उसी प्रकार सन्त स्वयं विकल्प द्वारा यह लक्ष्य में आयी है, वह बात वाणी द्वारा आ जाती है, आ जाती है। कहते हैं – **ववहारेण वि दिट्ठी। केवल व्यवहारनय की दृष्टि से ही....** यह जीव किस गति में है और किस लेश्या में है और भव्य-अभव्य है, ज्ञान हुआ, ज्ञान की पर्याय है – ऐसे सब भेदों को जानना, वह व्यवहारनय का विषय जानने योग्य है। समझ में आया? आदरणीय नहीं। आहा...हा...!

यहाँ तो फिर जिनेश्वर द्वारा कथित.... अन्यमती कथित वस्तु होती ही नहीं। जिनेश्वर ने मार्गणा और गुणस्थान कहे हैं। समझ में आया? चौदह गुणस्थान और चौदह मार्गणा। मार्गणा अर्थात् खोजना। मार्गणा अर्थात् शोधना कि यह जीव किस गति में था? उसे कौन सा भाव था? कौन सी कषाय थी? कौन सी दृष्टि थी? भव्य है या अभव्य है? समझ में आया? सम्यग्दृष्टि है (या) मिथ्यादृष्टि है? यह ज्ञान है – उसमें मति-श्रुत है या केवल है या अवधि है? इस प्रकार उसे – जीव को किसी भी चार गति में से ऐसे चौदह बोल से खोजकर निर्णय करना कि यह जीव ऐसा है। यह सब चौदह बोल – गति, जाति, काया, इन्द्रिय, लेश्या.... समझ में आया? योग, उपयोग, यह सब जानने की पर्याय तो जानने जैसी है, जानने योग्य है। उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता। समझ में आया? ए... रतिभाई! आहा...हा...!

केवल व्यवहारनय की.... ववहारेण वि दिट्ठि – ऐसा है सही न? **केवल व्यवहारनय की दृष्टि से ही जीव को मार्गणा और गुणस्थान....** गुणस्थान (अर्थात्) यह पहले गुणस्थान में है, यह दूसरे में है, यह तीसरे में है, यह चौथे में है, यह पाँचवें-छठवें में और यह केवली है, लो! यह तेरहवें में केवली है। तेरहवें गुणस्थान में केवली है, चौथे गुणस्थान में सम्यक्त्वी है, छठवें गुणस्थान में मुनि है – यह पर्याय के भेदवाली समस्त बात जाननेयोग्य भले हो, आदरणीय नहीं है। उसके ज्ञान द्वारा सम्यग्दर्शन नहीं होता।

जिसकी चौदह (मार्गणा) – गति, काय, इन्द्रिय, लेश्या आदि में जिसकी पर्याय में जिसकी भूल है, उसकी तो यहाँ बात नहीं करते अथवा जिसे मुनिपने की पर्याय, केवलज्ञान की पर्याय, सम्यग्दर्शन की पर्याय, मिथ्यादर्शन की पर्याय कैसी होती है? – ऐसी पर्याय का जिसको ख्याल नहीं है, उसकी यहाँ बात नहीं करते। मुनिपने की दशा ऐसी होती है, केवलज्ञानी की ऐसी होती है, चौथे की – सम्यक्त्व की ऐसी होती है, मिथ्यात्व की ऐसी होती है। ऐसे जीवों को चार गति में खोजने से कुछ निश्चित करे कि यह जीव उसमें है। यह सब ज्ञान भले हो, जानने के लिये है। इतना भेद है, वह जानने के लिये है, आश्रय करने और उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है – ऐसे गुणस्थान और मार्गणास्थान

के भेद में ताकत नहीं है। समझ में आया? मार्गणा किसे कहना और गुणस्थान किसे कहना? यह कभी सुना नहीं होगा। मार्गणा क्या होगी?

मार्गणा अर्थात् इन चौरासी लाख में किसी भी जीव को खोजना हो – शोधना हो कि भई! यह किस गुणस्थान में है? भव्य है या अभव्य है; केवली है या छठवें गुणस्थान में है; यह नारकी है या देव है; यह कृष्णलेश्यावाला है या ज्ञान उपयोगवाला है या दर्शन उपयोगवाला है – ऐसी वर्तमान पर्याय का अस्तित्व है। इसलिए उसे मार्गणा अर्थात् शोधने द्वारा निर्णय करे, परन्तु यह तो व्यवहार.... केवल व्यवहारदृष्टि से कथन है। आहा...हा...! परन्तु यह है या नहीं? है या नहीं? है तो निश्चय से है – ऐसा नहीं। है परन्तु वह व्यवहार है। भेदरूप से अवस्था में ज्ञान में है, वस्तु है, व्यवहारनय का विषय है। समझ में आया? उसे त्रिकाल अभेददृष्टि की अपेक्षा से इन समस्त भेदों को अभूतार्थ कहा जाता है, असत्यार्थ कहा जाता है, झूठा है – ऐसा कहा जाता है। वे 'है' इस अपेक्षा से सत्यार्थ हैं, परन्तु त्रिकाल की अपेक्षा से उन्हें असत्यार्थ कहा गया है। आहा...हा...!

मुमुक्षु – दो प्रकार से लागू पड़े।

उत्तर – दोनों लागू पड़े।

मुमुक्षु – उसे अनेकान्त कहते हैं।

उत्तर – दूसरा अनेकान्त किसे होगा? फूदड़ीवाद को होगा? आहा...हा...!

भगवान आत्मा किस पर्याय में है? किस गति में है? भव्य हूँ – ऐसा जो ख्याल आना, वह सब व्यवहार ज्ञान का विषय है। आहा...हा...! पर्याय है न! समझ में आया? यह ज्ञान उपयोग है, वह मति का है और श्रुत का है और अवधि का है और केवल का है, यह क्षायिक समकित कहलाता है और यह क्षयोपशम समकित कहलाता है और यह उपशम समकित कहलाता है – यह सब पर्याय के भेद हैं। यह पाँच इन्द्रियवाला है और यह एक इन्द्रियवाला है यह दो इन्द्रियवाला है – यह सब इस अवस्था दृष्टि से है अवश्य, हाँ! 'है' अपेक्षा से है परन्तु त्रिकाल स्वभाव के अभेद अवलम्बन का आश्रय करने की अपेक्षा से वह सब नहीं है। मुझे लाभदायक नहीं, वह नहीं; मुझे लाभदायक नहीं, वह

नहीं। मुझे लाभदायक अभेद है, इसलिए वह है। समझ में आया? इसमें समझ में आता है या नहीं? धीरे-धीरे (अर्थ) होता है, भाई!

ववहारेण वि दिट्ठी – है न परन्तु.... यह शब्द पड़े हैं या नहीं, उस पुस्तक में? पुस्तक बड़ी नहीं परन्तु अर्थ कैसा! केवल व्यवहारनय। **ववहारेण** ऐसा शब्द है। उसका अर्थ किया, व्यवहारनय.... व्यवहार कहो या व्यवहारनय कहो। उसकी दृष्टि से ही **जीव को मार्गणा और गुणस्थानरूप कहा गया है।** मार्गणा अर्थात् यह जीव यहाँ है, यह जीव यहाँ है, पर्याय में यह है – ऐसा कहा (जाता है) और इस गुणस्थान में जीव है, इस गुणस्थान में जीव है – ऐसा कहा गया है।

निश्चयनय से.... अभेदस्वभाव की दृष्टि से कहा जाये तो **अप्पा मुणहु... अपने आत्मा को आत्मारूप ही समझ....** भेद-बेद नहीं। यह समकित पर्याय है और यह ज्ञान उपयोग है और यह भव्य है, यह नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? यह राग अभी एक-दो भव करेगा – यह ज्ञान जानने योग्य है, आदरणेय योग्य नहीं। समझ में आया? यह तो मार्गणा की दृष्टि से व्यवहार आया कि राग है। समझ में आया? 'असेस कर्म का भोग है' श्रीमद् कहते हैं न? 'भोगनां अवशेष रे.... इससे देह एक धारकर जाऊँगा, स्वरूप स्वदेश रे....' हमें अभी हमें थोड़ा राग वर्तता है, इसलिए ऐसा ज्ञात होता है कि थोड़े काल अभी राग का वेदन रहेगा, उससे ऐसा ज्ञात होता है कि एक-दो भव करने पड़ेंगे। श्रीमद् राजचन्द्र। समझ में आया? 'असेस कर्म का भोग है' अनुभवपूर्ण उग्रता का है नहीं और उग्रता अल्प काल में होवे – ऐसा अभी भासित नहीं होता। आहा...हा...! 'असेस कर्म का भोग...' कर्म अर्थात् राग। अभी अल्प राग की वेदन दशा मानो लम्बाती है – ऐसा लगता है। यह व्यवहारनय का विषय है।

मोक्ष भी है न! जाये कहाँ? भगवान आत्मा मोक्षस्वरूप है। चैतन्य महासत्ता आनन्द का कन्द, वह मुक्तस्वरूप ही है। जाये कहाँ और आये कहाँ? आहा...हा...! समझ में आया?

कहते हैं, ऐसा जो ज्ञान.... एक देह धारना है, अभी एकाध देह मनुष्य की होगी, यह सब पर्याय का – व्यवहार का ज्ञान हो, आदरणीय नहीं है। आहा...हा...! समझ में आया?

निश्चयनय से अपने आत्मा को आत्मारूप ही समझ। पर्याय का ज्ञान कराया... समझ में आया? **कहिया.... कहिया** है न? **कहिया** है अर्थात् जान। है, मार्गणा है, गुणस्थान है, भगवान की वाणी में जो व्यवहार आया, वह सब है। है वह भेदरूप है, अंशरूप की दशावाला भाव है, वह जाननेयोग्य है; आश्रय करने योग्य नहीं। समझ में आया? पुनः अन्यमती से पृथक् पर्यायनय से किया है। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त जितने अज्ञानियों ने व्यवहार का विषय कहा है, वह सब मिथ्या है। परमेश्वर जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ केवलज्ञानी ने जो देखा, उसका जो गति, मार्गणा आदि के पर्याय के भेद उन्होंने कहे, वैसे हैं – ऐसा तू जान तो यह अभी तो व्यवहार है। आहा...हा...! समझ में आया? इससे यह मार्गणा (भेद) लिये कि गुणस्थान और मार्गणा और इस जगह गुणस्थान पहला, तीसरा, चौथा जो हो वह। यह जीव इस गति में है और इस कषाय में है, इस लेश्या में है। समय-समय की पर्याय में कौन-कौन सी पर्याय है, वह जानने (योग्य है)। जैसा भगवान ने कहा, वैसा व्यवहारनय के विषय में है। अन्यमत में तो यह (है ही नहीं) वीतराग के अतिरिक्त-परमात्मा के अतिरिक्त कहीं नहीं है। उसे कहते हैं कि व्यवहारनय से **दिट्ठी मग्गण** गुणस्थान कहे हैं। व्यवहार से भगवान के ज्ञान में यह कहा है। निश्चय से अपने आत्मा को समझ – **अप्पा मुणहु** – भगवान को जान। ओ...हो...! जिसमें केवलज्ञान का कन्द पड़ा है, जिसमें अनन्त गुण की राशि है। एक-एक गुण में अनन्त सामर्थ्य पड़ा है – ऐसा प्रभु! **अप्पा** ऐसा कहा है न? गुण की कहाँ बात की है? आत्मा... आत्मा एकरूप त्रिकाल अभेद महासत्ता – ऐसा भी जिसमें भेद नहीं है... समझ में आया? ऐसे आत्मा को **मुणहु। आत्मा को आत्मारूप ही समझ....** ऐसे आत्मा को आत्मारूप जान।

'जिय परमेट्ठि पावहु' जिससे तू सिद्ध परमेष्ठी अथवा अरहन्त परमेष्ठी का पद पा सके। आहा...हा...! देखो! यहाँ कहा अब, उसका फल कहा। पहले में (सोलहवीं गाथा में) **अप्पा दंसण मुणहु** कहा था न? समझ में आया? उसमें कहा था न? **अण्णु ण किं पि वियाणि। मोक्खह कारण जोईया णिच्छह एहउ जाणि॥ १६॥** वहाँ कहा। यहाँ फल बताते हैं। जो कोई भगवान आत्मा, अन्तर-अभेदस्वभाव चिदानन्द

का ज्ञान करेगा, उसका आश्रय करके ज्ञान करेगा, वह निश्चय से अरहन्त और सिद्धपद को प्राप्त करेगा। वह मार्गणा और गुणस्थान का जो निषेध किया, उसमें यह मोक्षपद की पर्याय सिद्धपद की पर्याय-केवलज्ञान की पर्याय को प्राप्त करेगा। समझ में आया?

जिय परमेट्ठि पावहु जिसके द्वारा, ऐसा। **जिय** अर्थात् **जिससे तू सिद्ध परमेष्ठी....** अपने आत्मा को जानने से ही सिद्ध होगा... व्यवहार को जानने से सिद्ध नहीं होगा। समझ में आया? (यह कहते हैं) – जिस भाव से तीर्थंकरकर्म बाँधे, वह भाव आया तो उसकी मुक्ति होगी... तीर्थंकर प्रकृति बँधी न? प्रकृति बँधी तो मुक्ति होगी – झूठ बात है। यह तेरा ज्ञान ही मिथ्या है। समझ में आया? यह **अप्पा मुणहु** में स्थिर होगा तब केवलज्ञान को प्राप्त करेगा। राग आया, और बंध हुआ, इसलिए केवलज्ञान को प्राप्त करेगा ऐसा है नहीं। क्या कहा? इसमें समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि को आत्मा में विकल्प आया कि तीर्थंकर गोत्र बँध गया। यह विकल्प आया और उसका ज्ञान भी आत्मा को आश्रय करने योग्य नहीं; विकल्प और प्रकृति का बँध, वह जानने योग्य है। उससे मुक्ति होगी – ऐसा नहीं और उसका ज्ञान करने योग्य है, इसलिए उसके ज्ञान से मुक्ति होगी – ऐसा नहीं। आहा...हा...!

मुमुक्षु – उसमें तो ऐसा आता है।

उत्तर – यह सब तो व्यवहार के कथन, निमित्त के कथन हैं। एक ही बात – भगवान! **अप्पा मुणहु जिय पावहु परमेट्ठि** यह विकल्प उत्पन्न हुआ, पता पड़ा। भगवान ने श्रेणिक राजा से कहा, भगवान ने श्रेणिक राजा से कहा कि हे श्रेणिक! तू भविष्य में तीर्थंकर होगा। समझ में आया? समवसरण में क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त हुए, वह सब स्वभाव के अवलम्बन से क्षायिक को प्राप्त हुए और क्षायिक का ज्ञान तथा तीर्थंकर होगा इसका ज्ञान, वह ज्ञान उसे केवलज्ञान का कारण नहीं है। आहा...हा...! रतनलालजी! अद्भुत बात भाई! बेचारे लोगों को डर लगता है। ए... सोनगढ़ का एकान्त है। अब, यह सोनगढ़ का नहीं, यह भगवान का है। सुन न! तुझे भगवान के मार्ग का पता नहीं। समझ में आया? ए... हिम्मतभाई! ये भड़कते हैं, भड़कें.... ए... वहाँ तो ऐसा हो जाता है।

अकेली निश्चय की बातें, व्यवहार की तो उड़ा दी। सुन न अब! तुझे व्यवहार का पता नहीं है, निश्चय का पता नहीं है, तू किसकी बातें करने लगा?

यहाँ कहते हैं भगवान आत्मा में जिसे आत्मदर्शन हुआ, सम्यक्त्व हुआ, उसे यह तीर्थंकरपने के बंध का विकल्प आया, प्रकृति बँधी, भगवान ने कहा तू तीर्थंकर होगा... आहा...हा...! यह तीर्थंकर होऊँगा, इस सम्बन्धी का ज्ञान, केवलज्ञान को प्राप्त करायेगा – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! समझ में आया? आहा...हा...! यहाँ तो कहते हैं कि व्यवहार दृष्टि से वह जाननेयोग्य है। समझ में आया? आहा...हा...!

मुमुक्षु – उस ज्ञान की महिमा नहीं।

उत्तर – उसकी महिमा नहीं।

अप्पा मुणहु जिय पावहु परमेट्ठि ऐसा है न? भगवान, उसके धारावाही ज्ञान से केवलज्ञान, सिद्धपद को पायेगा। प्रकृति से नहीं, विकल्प से नहीं, उसके ज्ञान से नहीं; उसके ज्ञान में निश्चित आ गया है कि भगवान ने कहा है, इसलिए मैं तीर्थंकर होनेवाला हूँ – ऐसा ज्ञान में आ गया होने पर भी वह ज्ञान आश्रय करने योग्य नहीं है। आहा...हा...! समझ में आया? अद्भुत, भाई! योगीन्द्रदेव... योग जोड़ वहाँ। यहाँ योग कहाँ (जोड़ता है)? आहा...हा...! समझ में आया या नहीं? ए...ई... रतिभाई!

णिच्छइणइ अप्पा मुणहु जिय पावहु परमेट्ठि लो! वे **कहिया ववहारेण वि दिट्ठि** यह तो मात्र **कहिया** इतने में ले लिया, बस! **कहिया** का अर्थ यह जान, इतना। वचन कहा, परन्तु वह जान, इतना। **णिच्छइणइ अप्पा मुणहु** भगवान आत्मा एक समय में एकाकार प्रभु को जानने से तू निश्चित केवलज्ञान को पायेगा, तू निश्चित सिद्धपद को पायेगा। तीन काल में यह बात बदले – ऐसी नहीं है। आहा...हा...! हैं?

मुमुक्षु – बिना टीका के भी स्पष्टता बहुत आती है।

उत्तर – टीका है न इसमें शब्दार्थ है। शब्दार्थ थोड़ा है परन्तु वह अन्दर है न? पाठ बोलता है या नहीं?

मुमुक्षु – ज्ञान बोलता है या नहीं, यह निश्चित करो न, पाठ में चाहे जो हो।

उत्तर – यह ऐसा कहते हैं।

व्यवहार पराश्रित है। **दूसरे द्रव्य की अपेक्षा से आत्मा को कुछ का कुछ कहता है।** ऐसा इन्होंने थोड़ा लिखा है। **निश्चयनय स्वाश्रित है, आत्मा को यथार्थ जैसा का तैसा कहता है। निश्चयनय से आत्मा स्वयं अरहन्त अथवा सिद्ध परमात्मा है।** स्वयं अरहन्त और परमात्मा वस्तु वर्तमान... वर्तमान... वर्तमान...। मैं सिद्ध परमात्मा, मैं सदा सिद्ध परमात्मा, वस्तु से हूँ – ऐसी अन्तर की दृष्टि, उसका ज्ञान, वह पर्याय में सिद्ध पद को पाने का कारण है; दूसरा कोई ज्ञान, दूसरी कोई श्रद्धा, दूसरे कोई आचरण आत्मा को मुक्ति प्राप्त करने का कारण नहीं है। कहो, समझ में आया?

जिय पावहु परमेट्ठि देखो! वह परमेष्ठी होता है। जो परमेष्ठी का पद व्यवहारनय से पहले जाननेयोग्य कहा था, उसके आश्रय से परमेष्ठी नहीं हुआ जाता। एक भगवान आत्मा एक समय में परिपूर्ण प्रभु, अभेद चीज की दृष्टि होने पर, उसका ज्ञान होने पर वह ज्ञान और दृष्टि स्वभाव के साथ अभेद हुई, वह अभेदपना सिद्धपद की प्राप्ति में कारण है; दूसरा कोई कारण नहीं है। व्यवहाररत्नत्रय आदि मुक्ति का कारण नहीं है – ऐसा कहते हैं। यह व्यवहार का ज्ञान भी मुक्ति का कारण नहीं है – ऐसा कहते हैं। मार्गणा और गुणस्थान का ज्ञान भी मुक्ति का कारण नहीं है। आहा...हा...! समझ में आया?

सुद्धं तु वियाणंतो फिर यह सब बात ली है। गति और इन्द्रियाँ और है न? मार्गणा, काय, योग, वेद... किस वेद में जीव है, किस कषाय में है, किस योग में है, मन-वचन-काया.... किस ज्ञान में, संयम में कौन सा संयम वर्तता है, क्या दर्शन? कौन सी लेश्या? समकित, संज्ञी ये सब भले जानने योग्य है। वीतरागमार्ग में यह व्यवहार है, वह जानने योग्य है और गुणस्थान के चौदह भेद लिये उन चौदह की प्रत्येक की व्याख्या की। यह सत्रह (गाथा की) व्याख्या हुई।

अब कोई ऐसा कि गृहस्थ में ऐसा मार्ग होता है या नहीं? कोई कहे, परन्तु यह मार्ग तो कोई महात्यागी मुनि, जंगल में जाये उनके लिये होता है। तो स्पष्टीकरण करते

हैं। इतनी बात ऐसी की है न? गुणस्थान, मार्गणास्थान का ज्ञान भी मोक्ष का कारण नहीं है। अब ऐसा मार्ग वह कहीं गृहस्थाश्रम में हो सकता है या नहीं या मुनि को अकेले को होता है?

१८। **गृहस्थ भी निर्वाणमार्ग पर चल सकता है।** लो, इस गृहस्थाश्रम में भी यह मार्ग हो सकता है। समझ में आया? गृहस्थाश्रम में राजपाट में दिखे, इन्द्र के इन्द्रासन में जीव दिखाई दे, वह गृहस्थी भी निर्वाण मार्ग पर चल सकता है। आत्मा है न उसके पास, कहते हैं। भगवान आत्मा है न? भगवान आत्मा अपने पूर्ण स्वरूप से वस्तु तो अखण्ड पड़ी है। अखण्ड का आश्रय करनेवाला गृहस्थाश्रम में भी निर्वाण को प्राप्त करने योग्य हो जाता है। इतने-इतने व्यापार-धन्धे होते हैं न? वे उनके घर रहे... वे तो जानने योग्य है। समझ में आया? अन्तर भगवान आत्मा का आश्रय करके गृहस्थाश्रम के व्यापार-धन्धे में हेयाहेय का ज्ञान वर्ते तो वह भी निर्वाण को प्राप्त करने योग्य है। यह कहेंगे।

(श्रोता – प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मुनिदशा को रोकनेवाला वस्त्र-ग्रहण का भाव

मुनिदशा होने पर सहज ही निर्ग्रन्थ दिगम्बरदशा हो जाती है। मुनिदशा तीनों काल नग्न दिगम्बर ही होती है। यह कोई पक्ष या सम्प्रदाय नहीं है, परन्तु अनादि की सत्य वस्तुस्थिति है।

शङ्का – वस्त्र तो परवस्तु है, वह कहाँ आत्मा को बाधक है? अत: वस्त्र होने में क्या आपत्ति है?

समाधान – यह बात सत्य है कि वस्त्र परवस्तु है; अत: वह आत्मा को बाधक नहीं है, परन्तु वस्त्र ग्रहण करने का भाव ही मुनिदशा को रोकनेवाला है। अन्तर में लीनता बढ़ जाने से मुनियों को ऐसी उदासीनता सहज हो जाती है कि उन्हें वस्त्र ग्रहण करने का विकल्प ही नहीं होता।

— पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी